THE TIMES OF INDIA

Date: 09-01-25

Black Holes

Death toll of illegal mines, which are also environmental hazards, keeps rising as govts look the other way

TOI Editorial

One miner had died and at least eight others were feared trapped in a 'rat-hole' coal mine – a narrow, deep and illegal mine with no safety measures – in Assam until Wednesday evening. When the rescue operation is over, the bodies won't figure in official statistics because India's Directorate General of Mines Safety only counts accidents in the formal sector. It claims coal mines have become safer over the years. Fatal accidents in coal mines declined from 143 in 1997 to 24 in 2022, it says. That's good, but what about the thousands of men, women and children – smaller bodies are an asset in these claustrophobic pits – risking life and limb every day? Rat-hole mines become big news every few years, but casualties are far more frequent. It's only when the toll mounts that news seeps out to the national level. Fifteen rat-hole miners died in an accident in July 2012, 15 again in Dec 2018, five in May 2021, six in Jan 2024, and these were just the too-big-to-ignore cases. Nobody really knows what goes on in Meghalaya's 26,000-odd rat-hole mines that never shut down despite an NGT order in 2014, or the hundreds more in Assam.

There's illegal sand mining too that's destroying rivers across the country. One study claimed 95 people drowned in sand pits dug in riverbeds by the mining mafia between Jan 2019 and Nov 2020. In 2018, a CAG report flagged the illegal extraction of almost 100L tonnes of minerals – copper, lead and zinc among them – over five years in just five Rajasthan districts. This is problematic on several counts. First, the obvious revenue loss to the state. Second, illegal mines never adhere to environmental regulations. Third and most important, they don't care about the lives of miners, as we are seeing now in Assam.

THE HINDU

Date: 09-01-25

Cripple and scuttle

Governments are discouraging the exercise of the right to information

Editorial

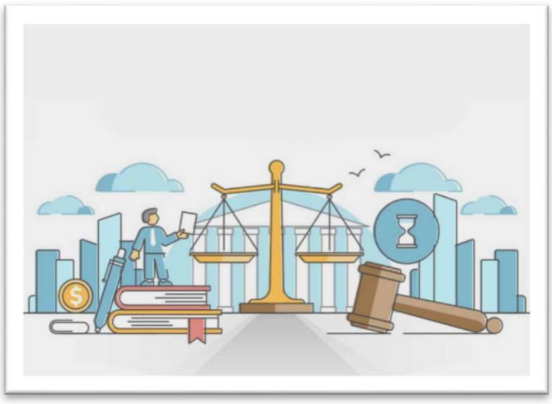

Nearly two decades after the passage of the Right to Information Act, it is quite apparent that governments, at least sections of it, are uncomfortable with the idea of transparency and empowerment associated with it. Amendments to dilute its efficacy and attempts to defeat it by delaying or denying information have been quite common for years. Another way to scuttle the law is to cripple the functioning of information commissions at the central and State levels. The issue has surfaced again, with the Supreme Court of India questioning the large number of vacancies in the central and some State Information Commissions. These commissions hear appeals from members of the public who have been denied access to information or have failed to elicit a response from designated information officers in various departments and institutions. A Division Bench has taken note of the fact that there are eight vacancies in the posts of Information Commissioners in the Central Information Commission (CIC), while 23,000 appeals are pending before it. In fact, some State-level Information Commissions are almost defunct for want of members to hear the public. Any court is bound to ask, as the Court has now done, how an institution can be of any use if it does not have persons to perform the required duties under the law.

The Court has sought to impart some urgency to the matter by directing the Department of Personnel and Training to spell out in two weeks the timelines for completing the selection process and notifying the appointments of the eight Information Commissioners in the CIC. It has also asked for details about the search committee and the list of applicants for the posts. Similarly, States that have initiated the appointment process but without any definite timeline have been asked to complete the process within a specified time. However, this may not be enough to bring about a revival in the fulfilment of the original purpose of the Act. Besides filling up vacancies, not all governments have complied with a Court verdict of 2019 that called for proactive efforts to fill up vacancies in time by advertising them early. The CIC's post was stripped of its autonomy some years ago when the government removed the fixed five-year tenure and made it open-ended. Not much has been done to appoint candidates from various walks of life, as retired civil servants continue to be chosen, a point noted by the Bench in the latest hearing. It is inevitable that a large number of vacancies will result in a huge backlog and ultimately discourage the people from seeking information. It is difficult not to conclude that this is what those in power want.

दैनिक भास्कर

Date: 09-01-25

विकास दर घटने का अनुमान खतरे की घंटी

संपादकीय

बजट की तैयारी के बीच राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के पहले अग्रिम अनुमान से कई बड़े संकेत मिल रहे हैं। इस अनुमान ने देश की जीडीपी विकास दर को आरबीआई, आईएमएफ, वर्ल्ड बैंक और एडीबी और एसएंडपी के अनुमानों क्रमशः (6.6, 7.0, 7.0, 65. और 6.8 प्रतिशत से घटाकर 6.4% कर दिया है। अर्थव्यवस्था तीन सेक्टर्स के कुल आठ उप-सेक्टर्स में से दो (कृषि और लोक प्रशासन) को छोड़कर अन्य छह में भारी गिरावट हुई है। नीतिकारों की चिंता यह होनी चाहिए कि भारत की वास्तविक मिश्रित वार्षिक विकास दर पिछले दस वर्षों में घटकर 5.9% रह गई है, जबकि पिछले चार वर्षों में तो मात्र 4.8% रह गई। हम यह कहकर खुश हो सकते हैं कि दुनिया के तमाम बड़े देशों में विकास दर भारत के मुकाबले काफी कम है, लेकिन यह समय चीन, जापान या अमेरिका से तुलना का इसलिए नहीं है, क्योंकि चीन का जीडीपी आयतन भारत से पांच गुना है जबकि जापान में आबादी कम है और अमेरिका में आबादी भारत के मुकाबले 25% और जीडीपी आयतन आठ गुना ज्यादा है। निजी अंतिम उपभोग व्यय और सरकारी फिक्स्ड पूंजी निर्माण किसी भी अर्थव्यवस्था में क्रमशः 60 और 30 प्रतिशत योगदान के साथ ग्रोथ इंजन होते हैं। दुर्भाग्य से इन दोनों में गिरावट है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड *Date: 09-01-25*

खेल प्रशासन में है सुधार की जरूरत

लवीश भंडारी, (लेखक सीएसईपी रिसर्च के प्रमुख हैं)

भारत की पुरुष क्रिकेट टीम का प्रदर्शन इन दिनों घर-घर में चर्चा और विश्लेषण का विषय है। हार के बाद अक्सर आरोप-प्रत्यारोप का दौर शुरू हो जाता है। खिलाड़ियों, अंपायरों, मैदान और कई बार तो बेचारे कोच और मैनेजरों को भी घर में बैठकर आलोचना करने वाले ऐसे लोगों का सामना करना पड़ता है। इन चर्चाओं में खराब प्रदर्शन के लिए उन्हीं लोगों के इरादों, जज्बे और क्षमताओं पर सवाल खड़े किए जाते हैं, जिन्हें कुछ हफ्ते पहले महामानव बताया जा रहा था।

खेल के एक फॉर्मैट में शानदार कप्तानी करने वाला दूसरे फॉर्मैट में इतनी घटिया कप्तानी कैसे कर सकता है? या जो प्रतिभाशाली खिलाड़ी अपनी दृढ़ता और एकाग्रता के लिए मशहूर हो वह अचानक उलटा काम कैसे करने लगता है? ये सवाल क्रिकेट ही नहीं किसी भी भारतीय खेल के बारे में पूछिए और आपको एक जैसी कहानियां नजर आने लगेंगी। टीम वाले खेलों में भारत के प्रदर्शन में निरंतरता क्यों नजर नहीं आती? बड़ी खेल सफलताएं अक्सर किसी ऐसे व्यक्ति की वजह से ही क्यों मिलती हैं, जो प्रशिक्षण, कोचिंग या प्रशासन पर अलग से खर्च करता है? और हां, देश में वैश्विक स्तर पर कड़ी टक्कर देने वाले खिलाड़ी या टीम इतने कम क्यों नजर आते हैं? इस सबसे बढ़कर हमारे खेल संगठनों पर बड़ी तादाद में राजनेता क्यों काबिज हैं?

खिलाड़ियों से यह सब पूछिए तो वे घटिया सुविधाएं, अपर्याप्त प्रशिक्षण, संसाधनों की कमी, पोषण की कमी, कमजोर जीन्स, खराब प्रबंधन, ब्यूरोक्रेसी, सरकारी मदद पर निर्भरता जैसी तमाम वजहें गिनाने लगेंगे। उनकी बात सही हो सकती है मगर यह गहरे तक पसरी सांगठनिक दिक्कत की ओर इशारा करती है। अगर हम इसे सही नहीं करते तो साल-दो साल में हमें एक-दो खेलों में एकाध अच्छा नतीजा मिल सकता है मगर संगठन के स्तर पर दिक्कत बनी रहेगी और घटिया प्रदर्शन तथा निरंतरता की कमी भी दिखती रहेगी।

सरकार ने अक्टूबर 2024 में राष्ट्रीय खेल प्रशासन विधेयक का मसौदा जारी किया। मैंने जो मसौदा देखा, वह बड़ा दिलचस्प था क्योंकि उसमें तमाम बातों के साथ संगठन के स्तर पर गड़बड़ी दूर करने का लक्ष्य रखा गया है। साथ ही पूरी तरह पारदर्शी प्रक्रिया स्थापित करने की बात है, जिसकी निगरानी एक खेल नियामक बोर्ड करेगा। प्रस्तावित बोर्ड का देश में सभी खेल संगठनों पर नियंत्रण होगा और उसके पास तय मानकों का पालन करने में नाकाम राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय या जिला स्तरीय खेल संस्थाओं की मान्यता निलंबित करने या खत्म करने का अधिकार भी होगा। मेरे विचार में ऐसा नियंत्रण महत्त्वपूर्ण है क्योंकि खेल संगठन देश के प्रति जिम्मेदार हैं और अपने-अपने खेलों के क्षेत्र में उनका एकाधिकार है तथा यह तय करने का अधिकार भी है कि कौन सा खिलाड़ी देश का प्रतिनिधित्व करने के लायक है।

दुर्भाग्य की बात है कि कई खेल संस्थानों पर कुछ गुटों का कब्जा है, जिसमें एक दूसरे के खिलाफ काम करने वाली लॉबी बैठी हैं। भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद के आरोप आम हैं। ऐसे कुप्रबंधन के नतीजे केवल खराब प्रदर्शन के रूप में सामने नहीं आते बल्कि मादक पदार्थों के सेवन और यौन दुर्व्यवहार के रूप में भी दिखते हैं। ओलिंपिक खेलों के स्तर पर भी खिलाड़ियों को भोजन, नींद और आराम की कमी से जूझना पड़ता है। कई बार उन्हें अहम प्रतियोगिताओं की तैयारी के भी पूरा समय नहीं मिलता।

ये सारी बातें जहां व्यवस्थागत कुप्रबंधन को दर्शाती हैं, लेकिन हमारे पास उल्लेखनीय सफलताओं के उदाहरण भी हैं। पिछले कुछ वर्षों में भारत ने शतरंज, हॉकी और निशानेबाजी समेत कई खेलों में अच्छी प्रगति की है। इन खेलों में हमें विश्व स्तर पर होड़ करने वाली प्रतिभाएं भी मिली हैं और दुनिया भर में भारत का नाम भी हुआ है। तीनों खेलों में धन की उपलब्धता ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है मगर एक बड़ी समानता और भी है। तीनों में से एक में कोच, दूसरे में पूर्व खिलाड़ी और तीसरे में एक राजनेता ने सफलता दिलाने में अहम भूमिका निभाई है। लेकिन तीनों में नाकामी भी है क्योंकि सफलता व्यवस्था की वजह से नहीं बल्कि व्यक्ति की वजह से मिली है।

एक बार सही मॉडल पता चल जाए तो सफलता तक पहुंचने के कई रास्ते हैं और देश में खेलों के संचालन के लिए मॉडल पहचानना जरूरी है। मुझे लगता है कि देश में किसी खेल संस्था को कामयाबी तब मिलती है जब कोई व्यक्ति इसे शीर्ष पर ले जाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है। ऐसे लोग ही खुद कोशिश कर जगह-जगह से संसाधन जुटाने में कामयाब हो जाते हैं और खिलाड़ियों के पनपने के लिए सही माहौल तैयार कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रक्रिया जरूरी है मगर लंबे समय तक कामयाबी पाते रहना है तो खेल के प्रशासन में लगे लोगों को प्रोत्साहन देना जरूरी है।

दिक्कत यह है कि खेल प्रशासन बोर्ड के मसौदे में ज्यादातर ध्यान प्रक्रियाओं पर दिया गया है और इसी से पता चल जाता है कि भारत में हम खेलों का प्रशासन कैसे करते हैं। राष्ट्रीय खेल संहिता का उदाहरण ले लीजिए। इसमें जोर इस बात पर है कि प्रशासनिक नियमों का पालन हो रहा है या नहीं, चुनाव हो रहे हैं या नहीं, खेल से जुड़े लोग ठीक से बदले

जाते हैं या नहीं। मगर इसमें जिस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है वह है खिलाड़ियों के साथ खेल संचालकों को भी पुरस्कृत, प्रोत्साहित करने का तरीका।

खेल प्रशासक अपने पद पर बने रहेंगे या नहीं यह इस बात पर निर्भर नहीं करता कि उनके कार्यकाल में खिलाड़ियों का प्रदर्शन कैसा रहा बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि वे अपने खेल की राजनीति को कैसे संभालते हैं। इसके लिए यकीनन राजनेता ही सबसे उपयुक्त होते हैं।

इनमें से कई प्रशासकों के पद स्वैच्छिक हैं। इन्हें वेतन नहीं मिलता या बहुत कम मिलता है। लेकिन उनके पास इतनी शक्ति होती है कि वे संसाधनों के आवंटन में दखल रखें और खिलाड़ियों के करियर पर असर डाल सकें। पद हो, ताकत हो मगर पर्याप्त वेतन नहीं हो तो कोई भी पेशेवर व्यक्ति वहां नहीं जाएगा। इन पदों पर तगड़े संपर्कों वाले लोग या राजनेता ही आएंगे, जिनके दूसरे स्वार्थ इससे जुड़े होंगे। दूसरे शब्दों में शासन और प्रबंधन आपस में जुड़े हुए हैं और इन खेल प्रशासकों को मिलने वाला पारितोषिक खेलों की सफलता के साथ जुड़ा हुआ नहीं है। कभीकभार कोई बड़ी हस्ती भी ऐसे पदों पर पहुंच जाती है। उनके कार्यकाल में सुधार भी होते हैं। लेकिन उनका कार्यकाल खत्म होने के साथ सुधार भी खत्म हो जाते हैं।

कंपनी चलाने के तौर-तरीकों से सीख लें तो दो काम करने होंगे। संगठनों का संचालन और उनका प्रबंधन अलग-अलग करना होगा। जो खेल प्रशासन में हैं, उन्हें अच्छी तरह से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। खेलों में प्रोत्साहन कैसे काम करेगा? सबसे पहले कॉरपोरेट प्रशासन और प्रबंधन में प्रोत्साहन विश्वसनीय उपायों और प्रदर्शन के आंकड़ों पर दिए जाते हैं। राष्ट्रीय खेल संस्थाओं के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शन और उससे नीचे स्तर की खेल संस्थाओं के लिए राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शन को पैमाना बनाया जा सकता है। प्रदर्शन में सुधार हो तो मौद्रिक और दूसरे प्रकार के प्रोत्साहन दिए जाने चाहिए। उन्हें पद पर बरकरार रखा जा सकता है। मेरे हिसाब से वरिष्ठ खेल प्रशासकों को बाजार के अनुरूप वेतन देना जरूरी है।

खेल रत्न और द्रोणाचार्य पुरस्कारों के साथ खेल प्रशासकों के लिए भीष्म पुरस्कार हो सकता है। दंड देने के लिए भी यही सिद्धांत होना चाहिए। अगर खिलाड़ियों का प्रदर्शन लगातार खराब हो तो प्रशासकों, प्रबंधकों और कोच को पद पर नहीं रहने देना चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 09-01-25

गिरफ्त में भगोड़े

संपादकीय

केंद्रीय 'गृह' मंत्री अमित शाह ने कहा है कि समय आ गया है कि अपराध करने के बाद देश फरार भगोड़ों को पकड़ने और उन्हें न्याय के कठघरे में लाने के लिए आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल करे। केंद्रीय जांच ब्यूरो द्वारा विकसित भारतपोल पोर्टल लॉन्च करते हुए शाह ने कहा कि इससे देश की हर जांच एजेंसी और पुलिस बल सरलता से इंटरपोल के साथ जुड़ कर जांच को रफ्तार दे सकेगा। मोदी सरकार द्वारा लाए गए तीन नये आपराधिक कानूनों में आरोपियों की अनुपस्थिति में ट्रायल के प्रावधान को जोड़ने की चर्चा करते हुए उन्होंने हथियारों और मादक पदार्थों व मानव तस्करी और सीमापार होने वा आतंकवाद के खिलाफ नई व्यवस्था को सहायक बताया । भारतपोल के पांच प्रमुख प्रारूप कनेक्ट, इंटरपोल नोटिस, रेफरेंस, ब्राडकास्ट और रिसोर्स के माध्यम से कानून प्रवर्तन एजेंसियों के लिए तकनीकी रूप से मददगार साबित होने की उम्मीद है। इसके 195 देशों के इंटरपोल से ब्राडकास्ट के जरिए सीधा जुड़ने से दस्तावेज और जरूरी जानकारियों का लेन- देन आसान हो जाएगा। इसकी विशेषता रिअल टाइम इंटरफेस भी है जो सीधा संवाद स्थापित करेगी। अब तक सीबीआई, आईएओ और यूओ के बीच संचार ई-मेल तथा फैक्स द्वारा ही संभव था। अंतरराष्ट्रीय डाटा सुरक्षित रखने, रेडकॉर्नर नोटिस और अन्य कानूनी नोटिसों के आदान-प्रदान में सहूलियत के साथ ही इंटरपोल के उन्नीस प्रकार के डाटाबेस का विश्लेषण तथा अपराधियों को पकड़ने की व्यवस्था हो सकेगी। भगोड़े अपराधियों को देश वापस लाने में सरकार को लोहे के चने चबाने पड़ रहे हैं। जिससे न केवल देशवासियों के समक्ष, बल्कि अंतरराष्ट्रीय जगत में भी कानूनी पकड़ और न्याय व्यवस्था को लेकर सवालिया निशान लगते रहते हैं। कड़े कानूनों का लाभ तभी है, जब विदेश में छिपे घोषित अपराधियों की धरपकड़ कर उन्हें सजाएं दी जा सकें। भगोड़ों को पकड़ कर देश वापस लाने के मोदी सरकार के दावों की लंबे समय से फजीहत होती रही है। तय रूप से शाह इस स्थिति से निकलने के प्रति गंभीर होंगे बेहतरीन होती विदेश नीति का फायदा लेते हुए सरकार को उच्च तकनीक के मार्फत दुनिया भर के भगोड़े अपराधियों के खिलाफ मुहिम चलाने में आसानी होगी। हैकर्स और जालसाजों द्वारा अति गोपनीय जानकारी में सेंध लगाने की गुंजाइश पर भी नजर रखी जा सकेगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 09-01-25

ट्रंप का नया नक्शा

संपादकीय

अमेरिका के पूर्व और भावी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अपने देश संयुक्त राज्य अमेरिका का एक ऐसा मनमानी मानचित्र जारी किया है, जिसमें कनाडा भी शामिल है। संसार को पहले भी अपने चमत्कारी कदमों और बयानों से अचंभित करने वाले ट्रंप की इस कवायद को अफसोस के साथ देखा जाए या नजरंदाज कर दिया जाए ? खुशी के साथ देखा जाए या दुख जताया जाए? विकृत मानचित्र ही नहीं, बल्कि उसके साथ जो दो शब्द लिखे हैं ओह कनाडा, उससे भी विश्व राजनय में कोई अच्छी व्यंजना नहीं हुई है। उन्हें पता ही होगा कि यह मानचित्र बहुतों को नागवार गुजरेगा, इसलिए 'ओह

कनाडा' कहने में अफसोस काही भाव निहित है। वैसे, इसमें कनाडा की बेचारगी भी निहित है। जो देश किसी महाशक्ति के पिछलग्गू बनकर चलते हैं या जरूरत से ज्यादा निर्भर रहते हैं, उन्हें ऐसी राजनीति के लिए तैयार रहना चाहिए। यह आक्रामक राजनीति या राजनय का दौर है, जो चीन से रूस तक और इजरायल से अमेरिका तक खूब चल रहा है। बीत गया वह दौर, जब एक देश दूसरे की गोद में बैठ जाया करता था और उसके बावजूद उसकी संप्रभुता बनी रहती थी। अब यह नए दौर का आगाज है, जिसमें बहुत विचित्र संभावनाएं और आशंकाएं अपेक्षित हैं। जाहिर है, कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो को यह कतई अच्छा नहीं लगा है, पर उन्हें तभी सावधान हो जाना चाहिए था, जब डोनाल्ड ट्रंप ने आमने-सामने की भेंट में ही कनाडा को अमेरिका का 51वां राज्य बन जाने का प्रस्ताव दिया था। शायद तभी अगर ट्रूडो ने कड़ा व दोटूक जवाब दिया होता, तो आज यह नौबत न आती । अब बचाव या जवाब देने उतरी ट्रूडो की लिबरल पार्टी ने नया नक्शा जारी करके बताया है कि कौन सा क्षेत्र अमेरिका में है और कौन अमेरिका का हिस्सा नहीं है। अब कनाडा को अपने बचाव के लिए अलग ही रणनीति के साथ कूटनीति के मैदान में उतरना होगा। संभव है, उसे चीन या रूस का भी सहारा लेना पड़े। हालांकि, यह आसान नहीं होगा। ट्रूडो तो पद से हटने वाले हैं, लेकिन वहां जो भी सत्ता संभालेगा उसे विश्व स्तर पर अपने लिए समर्थन की व्यवस्था करनी पड़ेगी। फिर भी, उसके लिए बेहतर यही होगा कि वह ट्रंप से ही बात करे। ट्रंप ने साफ कर दिया है कि वह आर्थिक बल का इस्तेमाल करके कनाडा का अधिग्रहण करेंगे। उन्होंने तो कनाडा को साफ इशारा कर दिया है कि वह उस कृत्रिम रूप से खींची गई सीमा रेखा से छुटकारा पाए और देखे कि वृहद देश कैसा दिखता है। अमेरिका की शक्ति बढ़ाने को लालायित ट्रंप की चाह केवल कनाडा तक सीमित नहीं है, वह पनामा नहर और ग्रीनलैंड पर भी कब्जा चाहते हैं एवं इसके लिए वह सैन्य बल का प्रयोग भी कर सकते हैं।

अब यह बहुत स्पष्ट बात है कि डोनाल्ड ट्रंप ने एक वृहद अमेरिका का स्वप्न देख रखा है, ठीक वैसे ही जैसे चीन देखता आ रहा है। हालांकि, अपने साम्राज्य के विस्तार में चीन कुछ आगे है। भारत के लिए चिंता की बात तो है, पर हमारे उन पड़ोसियों की चिंता ज्यादा बढ़नी चाहिए, जो एक उभरती महाशक्ति की गोद में जाने के लिए भारत को भी नाराज करने में गुरेज नहीं कर रहे हैं। भारत यह कूटनीतिक आग्रह जरूर कर सकता है कि दुनिया में ज्यादा से ज्यादा देशों की संप्रभुता पर कोई आंच नहीं आए। बहरहाल, ट्रंप ने अगर अपने सपने पूरे करने के लिए कदम तेजी से बढ़ाए, तो दुनिया में जगह-जगह उसका असर देखने के लिए तैयार रहना चाहिए।